International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 1; Issue 7; July 2016; Page No. 72-73

दलित चेतना और संत रविदास

प्रमिला देवी

सहायक प्रवक्ता, कन्या महाविद्यालय, खरखौदा, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

हिंदी में दलित कविता का इतिहास बहुत पुराना है। इसे हम और भी पीछे ले जा सकते हैं। मध्यकाल से वैदिक काल तक दलित ने अपनी व्यथा को हर युग और काल में व्यक्त किया है। वह अत्याचारों और अन्यायों के खिलाफ सदैव मुखर रहा है। उसने अपने विरूद्ध व्यवस्था के प्रतिबंधो। को कभी भी न तो चुपचाप स्वीकार किया है और न सहन किया। आर्यो के वैदिक दर्शन के विरूद्ध अनार्यों की आजीवक दर्शन–धारा (लोकवादी) ने व्यापक जन–जागरण किया। मनुस्मृति से पता चलता है कि शूद्रों ने ब्राह्मणों की सत्ता को स्वीकार नही किया और सदैव समानता के स्तर पर ही उससे व्यवहार किया। दलित चेतना के स्वर कबीर और रविदास की वाणी में अपनी पूरी जीवन्तता के साथ मौजूद हैं। वस्तुतः 'दलित' शब्द की अवधारणा के विषय में विद्वानों में मत–मतांतर हैं। जैसे कुछ विद्ववानों के अनुसार –''दलित का अर्थ है – जिस का दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो।''[1] दलित शब्द वर्तमान में प्रायः चांडाल, मेहतर, हरिजन, आदिवासी, अछूत जातियो। के लिए रूढ हो चुका है।[2] ''दलित मतलब मानवीय अधिकारो। से व।चित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो।'' ''दलित शब्द आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, चुभन, घुटन और छटपटाहट का प्रतीक है।

मध्यकालीन समय में दलित शब्द प्रयोग में नहीं था। उसके स्थान पर अन्य शब्द अस्तित्व में थे। भारतीय वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र में दलित के लिए शूद्र जैसे शब्दो। का प्रयोग किया जाता था जो निम्न जाति के प्रतीक शब्द बन गए थे। इसी वर्ण व्यवस्था का संत कवियो। ने घोर विरोध किया और कर्म (कार्य) की महत्ता को प्रतिष्ठित किया। ऐसे संत कवियो। में संत रविदास अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने। तत्कालीन युग में दलित–परिवार में जन्म और पालन–पोषण पाकर जिस गहराई से अपने समकालीन भारत की स्थिति को भा।पा, भविष्यत भारत की कल्पना की और तद्नुरूप अपनी मृदुल–वाणी और सत्कर्मो द्वारा उस कल्पना को साकार किया।

संत रविदास की वाणी कर्म, श्रम, भक्ति, विनम्रता, सत्य, समानता, संयम, अहिंसा, शील, संतोष, सदाचार, स्वतंत्रता और परोपकार की शिक्षा पर बल देती हुई मानव और समाज के संबंधो। की मानवीय व्याख्या प्रस्तुत करती है, जो हमारी संस्कृति को जीवित रखे हुए है। संत रविदास के चिंतन के दो छोर माने जाते हे। – निर्गुण और निर्वर्ण। निर्गुण एकेश्वर और पूर्ण ब्रह्म का सगुण, बहुदेव वाद और सापेक्ष से इतना संबंध नही है जितना दुनिया से है। उन्होने। अस्पृश्यता के खिलाफ अपना निर्वर्ण संप्रदाय खड़ा किया है।''[3]

''जाति पाति के फेर माहि, उरझि रहो सब लोग,
मनुषता कू। खात हुई, रविदास जात का रोग।[4]

शूद्र कौन है ? शूद्रों के विषय में भी संत रविदास के साहित्य में हमें विस्तृत जानकारी मिलती है। सबसे पहले शूद्र शब्द का अर्थ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। शूद्र शब्द 'शुच' धातु में 'रक्' प्रत्यय जोड़ने से बना है। 'शुच' का अर्थ शोक माना जाता है। लेकिन गुरू रविदास जी की शब्दावली में शुद्र का अर्थ पवित्र है, वे कहते है।–

''रविदास जउ पवित्र है, सोई सूद्र जान।
जोउ कुकरमी असुध जन, तिन्ह न सूद्र मान।[5]

अर्थात् जो व्यक्ति बहुत ही पवित्र जीवन व्यतीत करने वाला है उसी को शूद्र अर्थात् शुद्ध जानना चाहिए। जिनके कर्म भी बुरे है।, जीवन भी अशुद्ध है और अपवित्र है, उन्हे शूद्र नहीं मानना चाहिए बल्कि वे तो पापी और महानीच कहलाने के अधिकारी हैं। संत रविदास के समय में वर्ण के आधार पर समाज मे व्यक्ति का सम्मान तय होता था लेकिन रविदास जी ने वर्ण के कर्तव्यो। को पुनर्परिभाषित किया। संत रविदास जी ने वर्ण को जन्म से न जोड़कर आचरण और कर्म से जोड़ा। तभी तो वे कहते है। –

''ब्राह्मण छत्री बैस सूद, रविदास जनम ते नाहि।
जो चाह सुबरन कऊ, पावइ करमन माहि।''[6]

वे अन्यत्र कहते है।–

''बाहमन बेस सूद अरू खत्री, डोम च।डाल मलेछ मन सोई।
होई पुनीत भगव।त भजन ते, आपु तारि तारै कुल दोई।''[7]

तत्कालीन भारतीय समाज अनेक जातियो। व उपजातियो। में विभाजित रहा है। समाज के प्रभावशली लोगो। ने अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए समाज का विभाजन किया। जाति का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गो पर एक जैसा नहीं है। जाति व्यवस्था की श्रेष्ठता की मान्यता के कारण किसी को तो सभी अधिकार बिना किसी योग्यता के ही मिल जाते है।, कोई समस्त गुण सम्पन्न होते हुए भी वैधानिक, मानवीय और यहॉ। तक कि प्राकृतिक अधिकारो। से भी व।चित हो जाता है। ''जाति व्यवस्था को लेकर भारतीय समाज में समय–समय पर विभिन्न वर्गो की प्रतिक्रियाए। होती रही है। जाति कोई स्थिर वस्तु या स्थिति नहीं रही, बल्कि यह समय व स्थिति के अनुसार बदलती रही है।[7]

संत रविदास जी ने पहचान लिया था कि समाज में जाति के विष की अनेक परते। हैं। समाज में जाति के अंदर जातिया। मौजूद हैं। जैसे केलो। के पतो। में पते होते हैं। उसी तरह से जातिया। समाज में हैं। संत रविदास ने इस बात को भी पहचान लिया था कि जाति–व्यवस्था के रहते व्यक्ति–व्यक्ति में भाईचारा कायम नहीं हो सकता। जब तक समाज में जाति का नाश नहीं हो जाता। मनुष्यो। में एकता कायम नहीं हो सकती। उनका कथन है –

''जात–जात में जात है, ज्यो। केलन में पात।
'रविदास' न मनुष जुड़ सकै, ज्यो। लौ जात पे जात।''[8]

जाति के आधार पर मनुष्य–मनुष्य में भेदभाव करने को गुरू रविदास जी ने मनुष्यता का अपमान समझा। रैदास जी कहते है। कि किसी की जाति मत पूछो। यह जाति–पाति कुछ भी नहीं है। सब एक ही जाति कें है। और वह जाति है–मानव।

''रविदास जात मत पूछिए, का जात अरू पात,
ब्राह्मण खत्री बैस सूद, सभन कोउ इक जात।''[9]

संत रविदास जी ने जाति–पाति का विरोध ही नहीं किया अपितु दलित जाति के होते हुए भी श्रेष्ठ जाति के मिथ्या आडम्बरो। से अधिक सम्मान पाकर यह सिद्ध कर दिया कि सदाचार, ईमानदारी और श्रम के द्वारा कोई भी व्यक्ति महान बन सकता है। चमार होने का उन्हे। कोई दुख नहीं। उनकी वाणी से स्पष्ट है कि उन्होंने। स्वय। को बेघड़क चमार कहा है –

'रविदास' खलास चमारा। जो हम सहरी सुमीतु हमारा।[10]

संत रैदास का कहना है कि चमार होने में कोई पाप नहीं है। यदि हम चमार शब्द का शाब्दिक अर्थ करे। तो – 'च'–चमड़ी, 'मा'–मा।स, 'र'–रक्त। इस प्रकार सभी प्राणियो। में चमड़ी, मॉ।स और रक्त होता है। अतः सभी जन्म से चमार है। जिस युग में संत रविदास का आविर्भाव हुआ, वह युग साम।तवादी पद्धति पर स।गठित था। हिंदू समाज की वर्णाश्रम–व्यवस्था के कारण समाज में विषमता का जोर था। जाति–पा।ति तथा भेद–भाव के कारण समाज अनेक अ।धविश्वास एव। अज्ञान का शिकार बना हुआ था। शूद्र और मलेच्छो। की छाया से सनातनी वर्णाश्रम धर्मी घृणा करते थे। हिंदू रूढ़िवादी थे। संत रविदास ने वर्णाश्रम की धज्जियॉ। उड़ती देखी और उसके भीतर पारस्परिक संघर्ष को भी देखा। इन सबके पीछे उन्होने। मूर्खता और अज्ञानता का आलम्बन देखा। संत रैदास ने कर्म व गुणों के आधार पर व्यक्ति को पूजने के लिए कहा है न कि जाति के आधार पर –

'रविदास' ब्राह्मण न पूजिए, जउ होवे गुनहीन,
पूजहि। चरन चॉ।डाल के, जउ होय गुन प्रवीन।''[11]

इस प्रकार स्पष्ट है कि संत रविदास जी ने अपनी वाणी के माध्यम से तत्कालीन हिंदू समाज में व्याप्त जातिवाद, वर्ण व्यवस्था, धार्मिक स।कीर्णता का घोर विरोध किया। हिंदी काव्य में दलित वर्ग को स्थान देते हुए इस वर्ग के सुख–दुःख, आशा–निराशा एव। आह–चाह को रैदास जैसे कवियों ने स्थान प्रदान किया है। अनादि अनंत काल से गरीबी के शिक।जे से जूझते हुए, अन्याय के अंधकार में भटकते हुए, निराशा के दुभर आघात के शिकार बनते हुए, आंसुओ। की माला गूंथते हुए एवं शोषण के पाषाणो। के नीचे दबकर मानवता के विकृत रूप बने हुए दलितो। की करूण कथा को कवि रैदास ने अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया है। दलितों, हरिजनों की करूण कथा को सरस्वती का कंठहार बनाने का कार्य करने वाले महान कवियों में हिंदी के महारथी संत कवि रविदास अपना सर्वोच्च स्थान रखते हैं। संत रविदास जी ही ऐसे संत हुए है। जिन्होंने। विरोधियों के कटु वचन का भी मधुर वाणी में भी विनम्रता के साथ जवाब दिया। वे साक्षात् विनम्रता की मूर्ति थे। इसी कारण वे संतो। में शिरोमणी कहलाये।

संदर्भ

1. रामचन्द्र वर्मा–संक्षिप्त शब्द सागर, मूल संपादित, नागरी प्रचारिणी काशी, पृ. 468।
2. प्रवेशांक, दलित विमर्श, श्यौराज सिंह बेचैन, हम दलित मासिक, सितम्बर 1993, पृ. 20।
3. संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय–डॉ. धर्मवीर, पृ. 18–71, समता प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली।
4. वही।
5. गुरू रविदास : एक परिचय, साखी 21।
6. गुरू रविदास : एक परिचय, साखी 226।
7. मनुस्मृति, 8, 413।
8. संत रविदासः दलित मुक्ति की विरासत, सुभाषचन्द्र, पृ. 44।
9. गुरू रविदासः एक परिचय, साखी – 217।
10. गुरू रविदास : एक परिचय, साखी – 232।
11. गुरू ग्रंथ साहिब, पृ. 345।